THE HINDU

Date: 12-03-25

New opportunity

India and Canada can discuss a reset in ties after new Prime Minister takes over

Editorial

The newly elected leader of Canada's ruling Liberal Party, Mark Carney, who is now Prime Minister-designate, has a tough task ahead in what is expected to be a short period of time. Mr. Carney, who is set to take over from Justin Trudeau when he formally steps down this week, will almost immediately face a confidence vote in Parliament, after it reconvenes on March 24. Federal elections in Canada are due in October 2025, but observers say Mr. Carney could call for snap polls first, hoping to ride a surge of unexpected popularity for the Liberal Party for standing up to threats made by the U.S. President Donald Trump since he took office. Mr. Trump has consistently targeted Mr. Trudeau, suggesting that Canada would be better off as the "U.S.'s 51st State", and has been threatening to impose a slew of tariffs, accusing Canada of unfair duties as well as allowing fentanyl drugs and immigrants across the border. Canada has threatened counter-tariffs, and is considering a 25% surcharge on electricity exports to the U.S., with Mr. Carney claiming that "in trade, as in hockey, Canada will win". Mr. Carney, who is unelected and not a traditional politician, will have to convince voters of his ability to ensure that, as he takes on his rival, Conservative Party leader Pierre Poilievre, who has been far ahead in the polls until recent weeks. To that end, Mr. Carney's non-political skills will come handy. He was an economist and a central bank Governor; that he was not a member of the Trudeau cabinet means that he is free of any taint from its actions.

The exit of Mr. Trudeau is cause for relief for India, and an opportunity to reset ties that have been on ice. His intemperate decision to name "Indian government agents" and then expel Indian diplomats, implicating them in a purported plot to kill Khalistani activist Hardeep Singh Nijjar, without proffering any proof, was a miscalculation and diplomatic blunder. The actions, seen in comparison to more discreet dealing by the U.S. in a linked case, sent India-Canada ties to their lowest ebb since the 1980s. It is significant that India is considering restoring a High Commissioner to Ottawa, while Canada is sending its intelligence chief to a conference in Delhi. Mr. Carney and Mr. Poilievre have made it clear that they would like to rework the relationship with India, and there will be opportunities to do so, particularly in education, investment and trade, all of which have taken a back seat after the violence and schisms within India's diaspora community, and its supporters in Canada's government. The interlude is also a fitting period for New Delhi to consider how it wishes to take ties forward. Regardless of the change in leadership, the Khalistan issue cannot be wished away, and requires sustained, considered diplomacy and respect for each other's concerns, while ensuring India's national security priorities.

दैनिक भास्कर

Date: 12-03-25

विकास के लिए जरूरी क्षेत्रों में खर्च बढ़ाना होगा

संपादकीय

अर्थशास्त्र में नोबेल विजेता डेरोन एस्मोगलु की पुस्तक 'हाऊ नेशन्स फेल' में बताया गया है कि विकास की शर्त है- शिक्षा, स्वास्थ्य, शोध और सड़क, परिवहन, संचार जैसे अंतर्संरचनात्मक ढांचे में सरकारी व्यय बढ़ाना। इस संदर्भ में लेखक द्वारा की गई अनेक देशों की तुलनाओं में एक है एक-दूसरे के पड़ोसी नोगालिस - सोनारा (मेक्सिको) और नोगालिस- एरीजोना (अमेरिका) की तुलना । अमेरिकी नोगालिस आज प्रति व्यक्ति आय, शिक्षा और विकास के अनेक पहलुओं में शिखर पर है लेकिन तार के बाड़े से अलग किया गया मेक्सिको वाला नोगालिस अवनति की गर्त में | भारत प्रजातांत्रिक देश के रूप में विकास की छलांग लगा रहा है, लेकिन हाल के आंकड़े गवाह हैं कि स्वास्थ्य, शिक्षा, समाज कल्याण, कृषि, ग्रामीण विकास, रोजगार सृजन पर सरकारी खर्च कम हुआ है । उदासीनता का यह आलम है कि कई मदों में बजट में प्रावधानित राशि भी खर्च नहीं हो पाती यानी आरई (रिवाइज्ड एस्टीमेट) बीई (बजटरी एस्टीमेट) से कम होता है। 2017 में नई स्वास्थ्य नीति पेश करते हुए स्वास्थ्य मंत्री ने इस मद में खर्च बढ़ाकर अगले पांच वर्षों में जीडीपी के 2.5% करने का ऐलान किया था। लेकिन यह बढ़ना तो दूर, उलटे घटता हुआ 1.26% रह गया। अब कुछ बढ़ा है लेकिन इस साल यह राशि भी घटी है। कुल कैपेक्स भी बजट के बीई से कम हो गया है। जरूरत है कि एआई के दौर में हम मात्र उपभोक्ता बने रहने की जगह मैन्युफैक्चरिंग और कृषि में बड़ी छलांग लगाएं।

Date: 12-03-25

अमेरिका के टैरिफ दुनिया को मंदी में धकेल सकते हैं

नीरज कौशल, (कोलंबिया यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर)

अमेरिका ने अपने तीन सबसे बड़े व्यापारिक साझेदारों- मेक्सिको, कनाडा और चीन के साथ ट्रेड-वॉर छेड़ दिया है। अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने मेक्सिको और कनाडा से आयात पर 25 प्रतिशत और चीन से आयात पर 10 प्रतिशत की दो किस्तों में 20 प्रतिशत टैरिफ लगाकर पहला दांव चल दिया।

चीन और कनाडा ने चुनिंदा अमेरिकी निर्यातों पर टैरिफ लगाकर जवाबी कार्रवाई की। साथ ही टैरिफ का सामना करने वाले और आइटम्स को जोड़ने की धौंस दी। मेक्सिको भी यही कर रहा है। इस लड़ाई में कौन जीतेगा? ट्रम्प ऐसे दिखा रहे हैं जैसे वे पहले ही जीत रहे हैं। लेकिन ट्रेड-वॉर के विजेता उसे लड़ने वाले नहीं होते।

उनका लाभ उन मूकदर्शकों को मिलता है, जो लड़ाई का हिस्सा नहीं हैं। ट्रम्प के पहले कार्यकाल में चीनी उत्पादों पर टैरिफ के परिणामस्वरूप व्यवसायों ने अपनी उत्पादन-सुविधाएं मलेशिया, वियतनाम और थाईलैंड में स्थानांतरित कर दी थीं।

ट्रम्प कहते हैं कि वे तो अभी शुरुआत ही कर रहे हैं। अमेरिकी टैरिफ के प्रकोप का सामना करने वाले देशों की सूची लंबी है। यदि ट्रम्प ने अपने कहे अनुसार 2 अप्रैल को बड़ी संख्या में देशों पर जैसे-को-तैसा टैरिफ लगाया तो वैश्विक व्यापार में कमी से दुनिया भर में मंदी आने का अंदेशा है।

ट्रम्प ने भी इससे इनकार नहीं किया है। एक समय था जब अमेरिकी राष्ट्रपतियों को मंदी का डर सताता था, लेकिन ट्रम्प का मानना है वे मंदी से सुरक्षित हैं। जब उनसे पूछा गया कि वे व्यवसायों को क्या स्पष्टता प्रदान कर सकते हैं, तो उन्होंने कहा : समय के साथ टैरिफ बढ़ सकते हैं।

कनाडा और मेक्सिको पर टैरिफ अगर लंबे समय तक जारी रहे तो ये अर्थव्यवस्थाएं तबाह हो जाएंगी। दोनों ही देश अमेरिका पर बहुत ज्यादा निर्भर हैं। अमेरिका कनाडा के 75 प्रतिशत और मैक्सिको के 77 प्रतिशत निर्यात का खरीदार है।

मैक्सिकन जीडीपी में निर्यात का हिस्सा 36 प्रतिशत और कनाडा में 33 प्रतिशत है। तो ट्रम्प के टैरिफ अमेरिका के दो पड़ोसियों के जीडीपी के कम से कम एक चौथाई हिस्से को प्रभावित करेंगे और उन्हें एक गहरी मंदी में धकेल देंगे। अगर मैक्सिकन अर्थव्यवस्था मंदी में जाती है तो मेक्सिको से इमिग्रेशन अब की तरह कम नहीं रहेगा।

अभी यह स्पष्ट नहीं है कि व्यापार-युद्धों को रोकने के लिए ट्रम्प इन देशों से बदले में क्या चाहते हैं। मेक्सिको पर टैरिफ लगाने का पिछला तर्क अवैध प्रवासियों और फेंटेनाइल ड्रग के निर्यात को रोकने के लिए मजबूर करना था। अवैध इमिग्रेंट्स का आना तो लगभग बंद हो गया है।

मेक्सिको ने 29 ड्रग गिरोह के सरगनाओं को भी अमेरिका को प्रत्यर्पित किया है। मैक्सिकन राष्ट्रपति क्लाउडिया शिनबाम ने दक्षिणी सीमा पर 10,000 अतिरिक्त सैनिक तैनात किए हैं। लेकिन इन सबके बाद भी आखिर मेक्सिको को क्या मिला? निर्यात पर 25% टैरिफ!

कनाडा पर टैरिफ लगाने का औचित्य तो और भी अस्पष्ट है। उत्तरी सीमा से प्रवासियों का प्रवेश भी मामूली है और फेंटेनाइल ड्रग की तस्करी भी। लेकिन अब अपनी अर्थव्यवस्था को गहरी मंदी में गिरने से बचाने के लिए कनाडा क्या करेगा? और चीन को अमेरिका के टैरिफ के प्रकोप से बचने के लिए क्या करना चाहिए? याद रहे कि मेक्सिको, कनाडा और चीन पर टैरिफ रेसिप्रोकल यानी जैसे-को-तैसा वाले नहीं हैं।

ट्रम्प यह दांव लगा रहे हैं कि हाई टैरिफ लगाकर वे मैन्युफैक्चरर्स को अमेरिका आने के लिए मजबूर करेंगे। उन्होंने अपने स्टेट ऑफ द यूनियन संबोधन के दौरान कहा भी था कि वे आएंगे, क्योंकि अगर वे अमेरिका में मैन्युफैक्चरिंग करते हैं तो उन्हें टैरिफ नहीं देना पड़ेगा।

ट्रम्प के लिए टैरिफ-नीति अमेरिका को फिर से महान बनाने के बारे में है। लेकिन जैसे-जैसे अमेरिकी ट्रम्प की दोमुंही बातों को आत्मसात कर रहे हैं, वैसे-वैसे ही यह डर बढ़ता जा रहा है कि विश्व अर्थव्यवस्था मंदी में चली जाएगी।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 12-03-25

एमएसपी में जकड़ी प्रतिस्पर्द्धा

संपादकीय

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) देश की कृषि नीति का अनिवार्य अंग रहा है। इसके पीछे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा किसानों को कीमतों के जोखिम से बचाने जैसे नेक इरादे रहे हैं। लेकिन इसके कुछ अनचाहे परिणाम भी हैं जैसे फसलों की विविधता कम होना और देश के कुछ हिस्सों में पर्यावरण को नुकसान शामिल हैं। अब कृषि से होने वाली आय में इजाफे की जरूरत है मगर कुछ किसान समूहों की मांग मानकर एमएसपी को कानूनी जामा पहनाना अच्छा नहीं रहेगा। इससे सही मूल्य निकालने में दिक्कत आ सकती है और आगे चलकर उत्पादन और भी बिगड़ सकता है। इसके अलावा यह कृषि आय को सुरक्षित रखने का कारगर उपाय भी नहीं है।

राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्र और नीति अनुसंधान संस्थान का हाल में आया एक अध्ययन कहता है कि एमएसपी के लाभ कम किसानों तक ही पहुंच पाते हैं। अध्ययन में पता चला कि 15 फीसदी धान किसान और 9.6 फीसदी गेहूं किसान ही सरकारी खरीद प्रक्रिया में शामिल हैं और वे भी बड़े किसान हैं। छोटे और सीमांत किसान देश का 53.6 फीसदी धान और 45 फीसदी गेहूं उगाते हैं मगर सरकारी खरीद में उनकी ज्यादा हिस्सेदारी नहीं है। एमएसपी पर सरकारी खरीद में हिस्सेदारी और खेतों के आकार में सीधा संबंध इसलिए है क्योंकि छोटे और सीमांत किसानों को सरकारी खरीद व्यवस्था के बारे में बहुत कम जानकारी है। इसके अलावा अक्सर कम उत्पादन भी उनके हाथ बांध देता है।

एमएसपी से होने वाली दूसरी दिक्कतें हैं खजाने से भारी रकम निकल जामा, बहुत पानी खर्च कराने वाली फसलों का जरूरत से ज्यादा उत्पादन और भंडारण की नाकाफी व्यवस्था। कृषि आय सुधारने के लिए जरूरी है कि बाजार अच्छी तरह काम करें। इसमें बुनियादी ढांचे में निवेश और किफायती मूल्य श्रृंखला तैयार करना शामलि है ताकि खेत से निकली फसल के थाली तक पहुंचने में कीमत बहुत अधिक न बढ़े।

कीमतों में उतार-चढ़ाव हमेशा किसानों के लिए जोखिम से भरा होता है और उन्हें इससे बचाने के लिए उस अध्ययन में भावांतर चुकाने की बात है। इसके तहत किसानों को बाजार में एमएसपी से जितनी कम कीमत मिलती है उस अंतर की भरपाई कर दी जाती है। इसका लक्ष्य एमएसपी नीति को खरीद से हटाकर आय का साधन बनाना है मगर इसका

क्रियान्वयन भी दिक्कतों से भरा है। अतीत में मध्य प्रदेश भावांतर भुगतान योजना आजमा चुका है, लेकिन एक सीजन के बाद ही उसने इससे तौबा कर लिया।

कृषि अर्थशास्त्री अशोक गुलाटी का कहना है कि इस नीति से बाजार भाव और भी नीचे जा सकते हैं क्योंकि किसान तथा व्यापारी सांठगांठ कर बाजार मूल्य को एमएसपी से बहुत कम कर देंगे। इस तरह उन्हें अधिक भावांतर मिल जाएगा मगर सरकारी खजाने पर बोझ बढ़ सकता है।

जाहिर है कि इन सवालों के जवाब आसान नहीं हैं। फिर भी भारत को निजी खरीद प्रोत्साहित करने, फसलों में विविधता लाने और कृषि शोध बढ़ाने की जरूरत है। कृषि जिंसों के क्षेत्र में डेरिवेटिव्स बाजार भी भागीदारों को बाजार की अनिश्चितता और कीमतों के जोखिम से बचाते हैं। भारत को मुक्त बाजार और मजबूत कृषि मूल्य श्रृंखला चाहिए, जहां उपभोक्ताओं की जेब से जा रही रकम का बड़ा हिस्सा किसानों को ही मिले।

विशेषज्ञों ने कहा भी है कि इस क्षेत्र में वृद्धि मोटे तौर पर एमएसपी के दायरे से बाहर वाले उत्पादों से हो रही है। जरूरत यह है कि इन सफलताओं से सीखते हुए उत्पादन में मांग के मुताबिक बदलाव लाया जाए। मूल्य समर्थन और भावांतर भुगतान के जरिये सरकारें एक हद तक ही हस्तक्षेप कर सकती हैं मगर इस क्षेत्र को स्थायी मदद नहीं पहुंचाई जा सकती। कृषि बाजारों को व्यापार के लिए खोलने के बढ़ते दबाव के बीच सरकार समेत सभी अंशधारकों को प्रतिस्पर्द्धा बढ़ाने के रास्ते तलाशने होंगे।

Date: 12-03-25

तकनीक पर कब्जे के दौर में संसाधनों की साझेदारी

निवेदिता मुखर्जी

स्पेन के बार्सिलोना शहर में हर साल होने वाला दूरसंचार सम्मेलन मोबाइल वर्ल्ड कांग्रेस इस बार कुछ खास रहा क्योंकि डॉनल्ड ट्रंप के दूसरी बार अमेरिकी राष्ट्रपति बनने के बाद दूरसंचार उद्योग के दिग्गज पहली बार एक साथ इकट्ठे हुए। इनमें टेलिफोनिका और चाइना मोबाइल से टेलस्ट्रा, टेलिनॉर और भारती एयरटेल तक के मुखिया शामिल थे। सम्मेलन की दिशा पहले ही दिन टेलिफोनिका के चेयरमैन एवं सीईओ मार्क मर्टरा के भाषण ने तय कर दी। उन्होंने अधिक से अधिक फायदे के लिए तकनीक और दूरसंचार के संबंध को प्रगाढ़ बनाए जाने पर जोर दिया। मध्यकालीन गलियों, खूबसूरत वास्तुकला और बार्का (फुटबॉल क्लब एफसी बार्सिलोना) के लिए मशहूर इस शहर से मर्टरा का वीडियो पूरी दुनिया में देखा गया, जिसमें उन्होंने कहा, 'वक्त किसी के लिए नहीं रुकता और न ही तकनीक।'

जब भारती एयरटेल के चेयरमैन सुनील मित्तल मंच पर पहुंचे तो उन्होंने एक साथ आने और साझा करने की जरूरत पर पूरा जोर दिया। उन्होंने उद्योग, नियामकों और दुनिया भर की सरकारों से इसे सुनने और समझने की गुजारिश की। दूरसंचार कंपनियों और उनके साथ साझेदारी करने वाली तकनीकी कंपनियों के लिए मित्तल का एक ही संदेश था: साझा कीजिए और साझा कीजिए। इसका मकसद तकनीकी ढांचे को एक-दूसरे के साथ साझा कर लागत घटाना और मुनाफा बढ़ाना है। दूरसंचार की बड़ी हस्तियां वक्त के साथ चल रही हैं और जानती हैं कि तकनीक में (आर्टिफिशल इंटेलिजेंस से 5जी प्लस तक) भारी निवेश अब टाला नहीं जा सकता। उनका जोर इस बात पर है कि अकेले न चलकर बुनियादी ढांचा सबके साथ बांटा जाए तो चुनौती भरे इस माहौल में निवेश का बोझ बहुत कम हो सकता है।

विश्व व्यवस्था पर अपना दबदबा बढ़ाने की ट्रंप की मंशा को देखते हुए हर देश समझ रहा है कि आर्थिक बदलाव होना ही है और इस बदलाव में तकनीक की बहुत अहमियत है। कोविड-19 में वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला इस कदर बरबाद हो गई थी कि उसके उबरने की कोई उम्मीद ही नहीं थी। उसी दौर की तरह एक बार फिर देश अपने ही भरोसे रह गए हैं। ऐसे में तकनीकी संप्रभुता या तकनीक पर पूरी तरह नियंत्रण करने की बात उठने लगी है। इस समाचार पत्र द्वारा पिछले दिनों आयोजित एक कार्यक्रम में एचसीएल के सह-संस्थापक अजय चौधरी ने यही बात कही थी। विश्व व्यवस्था इतनी अप्रत्याशित हो गई है कि अपनी तकनीक, डेटा तथा डिजिटल ढांचे पर नियंत्रण रखने की किसी देश की क्षमता (तकनीकी संप्रभुता) को 'आत्मनिर्भरता' की दिशा में अहम कदम माना रहा है।

करीब 25 साल से बार्सिलोना सम्मेलन में और उससे पहले दुनिया भर में हुई जीएसएम वर्ल्ड कांग्रेस में लगातार पहुंचने वाले मित्तल ने भी तकनीकी संप्रभुता की बात उठाई मगर उनका विचार कुछ अलग था। मंच से जब उन्होंने तकनीक साझा करने का आह्वान किया तो उनका साफ मतलब था कि तकनीक में उत्कृष्टता और नया स्तर हासिल करने के लिए एक-दूसरे के संसाधनों का इस्तेमाल होना चाहिए। उन्होंने साफ शब्दों में यह भी कहा कि ब्रांड और सेवा में होड़ होनी चाहिए अपना अलग पूंजीगत ढांचा बनाने में नहीं। क्या तकनीक पर नियंत्रण की मौजूदा होड़ में उनकी बात सुनी जाएगी?

सम्मेलन में उपग्रह संचार (सैटेलाइट कम्युनिकेशन या सैटकॉम) का भी सरसरी तौर पर जिक्र किया गया। भारत में उपग्रह संचार की स्पष्ट नीति नहीं होने के कारण इसका स्पेक्ट्रम सालों से अटका पड़ा है। इसमें भी जोर तकनीक एवं संसाधन साझा करने पर ही था। मित्तल ने टेस्ला के संस्थापक एवं ट्रंप के करीबी सहयोगी ईलॉन मस्क का नाम लिए बिना सैटकॉम में स्पेक्ट्रम आवंटन पर टकराव का जिक्र किया। मस्क के नियंत्रण वाली कंपनी स्टारलिंक भारत में सैटकॉम में उतरना चाहती है और उसने नीलामी के बगैर सीधे स्पेक्ट्रम आवंटित किए जाने की मांग की है। मगर दूरसंचार उद्योग जगत के ज्यादातर लोगों ने नीलामी से स्पेक्ट्रम आवंटन के पक्ष में हैं। सरकार ने भी कह दिया है कि दुनिया के दूसरे देशों की तरह भारत में भी स्पेक्ट्रम नीलामी के बगैर दिया जाएगा मगर अभी यह नहीं पता कि कीमत कितनी रहेगी।

मित्तल ने बार्सिलोना सम्मेलन में मस्क की ओर इशारा करते हुए कहा कि यह लड़ाई का वक्त नहीं है। सुदूर इलाकों और अंतिम व्यक्ति तक पहुंचने में सैटेलाइट कम्युनिकेशन की अहमियत समझाते हुए उन्होंने कहा कि बचे हुए 40 करोड़ लोगों को दूरसंचार के दायरे में लेने का काम पूरा करना ही होगा।

दुनिया के इस सबसे बड़े दूरसंचार सम्मेलन में एकीकरण, ढांचे की साझेदारी और निवेश पर बेहतर रिटर्न की बातें जोर-शोर से उठाई गईं मगर चीन से आई एक बड़ी शख्सियत के विचार सबसे अलग रहे। चाइना मोबाइल के प्रेसिडेंट और सीईओ हे प्याओ ने एक ऐसी बात कही, जिस पर शायद ही किसी ने ध्यान नहीं दिया हो। उनकी बात का अंग्रेजी अनुवाद जब हॉल में गूंजा तब लोगों ने सुना, ' एआई प्लस को हम बनाते हैं, इस्तेमाल करते हैं और बदल डालते हैं..'।

हे का मतलब था कि एआई प्लस की दशा-दिशा चीन ही तय करता है और उनके भाषण में कुछ भी साझा करने की बात नहीं कही गई थी। जाहिर है कि चीन की सबसे बड़ी मोबाइल नेटवर्क कंपनी (जिस पर पीपल्स रिपब्लिक) को संसाधन साझा करने की कोई जरूरत नहीं लग रही है। यह उन दूरसंचार कंपनियों के रुख से एकदम उलट रहा, जो बार्सिलोना के मंच से अपनी सरकारों और नियामकों को कर तथा शुल्क कम करने के लिए कह रही थीं। तकनीक पर पूरी तरह कब्जा करने की हसरतों के इस दौर में क्या उनकी बात सुनी जाएगी?

राष्ट्रीय सहारा

Date: 12-03-25

ठेंगे पर आदेश

संपादकीय

सुप्रीम कोर्ट ने दैनिक वेतनभोगियों को नियमित करने के मामले में हाई कोर्ट के आदेश का अनुपालन न करने के मामले में जम्मू-कश्मीर के अधिकारियों की खिंचाई की। इसे हठधर्मिता बताते हुए इस निष्क्रियता को प्रथम दृष्टया अवमानना पूर्ण बताया। अधिकारियों ने मई, 2007 के उच्च न्यायालय के सरल आदेश का अनुपालन करने में 16 साल लगा दिए। पीठ ने हाई कोर्ट की खंडपीठ द्वारा लगाए गए पच्चीस हजार रुपये के जुर्माने में हस्तक्षेप करने से भी इंकार करते हुए इसे प्रतीकात्मक ठहराया। ग्रामीण विकास विभाग में 14 से 19 सालों तक काम करने वाले दैनिक वेतनभोगियों को नियमित करने का हाई कोर्ट ने आदेश दिया था। शीर्ष अदालत की पीठ ने कहा- हमें केवल दशकों की देरी की चिंता नहीं है, बल्कि यह निर्विवाद तथ्य भी है कि गरीब प्रतिवादी, दैनिक वेतनभोगी कर्मचारी होने के कारण याचिकाकर्ताओं द्वारा वार वार परेशान किए गए। अदालत ने जुर्माने को नजीर बताते हुए अधिकारियों पर भारी जुर्माना लगाने का आदेश दे कर बड़ी चेतावनी दी। कुछ दिन पहले ही श्रीनगर के लाल चौक पर भी दैनिक वेतनभोगी कर्मचारियों ने राज्य सरकार के खिलाफ प्रदर्शन किया था। तमाम नियमों व कानूनों के वावजूद दैनिक वेतनभोगियों व मजदूरों को भुगतान संबंधी दिक्कतों से न केवल जूझना पड़ता है बल्कि उनकी कोई सुनवाई भी नहीं होती । अदालती कार्रवाई में लगने वाले वक्त और धन के कारण भुक्तभोगी आजिज आ जाते हैं। सरकारी लापरवाही और अधिकारियों का रवैया सालों-साल खराब ही होता जा रहा है। बात सिर्फ जम्मू-कश्मीर की नहीं है। इन्हीं हालात से देश भर के दिहाड़ी श्रमिक व कर्मचारी गुजर रहे

हैं। केंद्रीय व राज्य श्रम आयोगों के कामकाज व रवैये को लेकर कर्मचारियों में हमेशा रोष नजर आता है, जो अपना कर्तव्य निभाने में असफल साबित हो रहे हैं। उस पर अदालतों के आदेशों को लेकर प्रशासन व अधिकारियों की उपेक्षा सरकार के सान्निध्य में आपसी मिली भगत से जारी रहती है। अधिकारियों पर सरकार का वरदहस्त न हो तो वे अदालत के आदेश को चुनौती देने का साहस नहीं कर सकते। चुनावी भाषणों में दैनिक मजदूरों-कर्मचारियों, बेरोजगारों और रोजगार की तलाश में ठोकरे खाने वालों के पक्ष में घड़ियाली आंसू बहाने वाले राजनेता देश भर के नागरिकों को मात्र दिवास्वप्न दिखाते रहते हैं। यही कारण है कि जनता का विश्वास अब सिर्फ न्याय व्यवस्था पर ही रह गया है।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 12-03-25

हिंदी - विरोध की वही पुरानी राजनीति

राज कुमार सिंह

सत्ता की राजनीति में चुनावी हार-जीत निर्णायक मोड़ होती है, लेकिन उसके लिए सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता की भावना को दांव पर लगा देना क्या उचित है? तमिलनाडु सरकार के हिंदी-विरोधी तेवर कई असहज सवाल खड़े करते हैं। बेशक, इस विवाद का एक पक्ष केंद्र सरकार भी है, जो भारतीय भाषाओं का संरक्षण सुनिश्चित करते हुए हिंदी को राष्ट्रीय एकता के भाषायी सूत्र के रूप में स्थापित करने का दावा कर रही है। इसमें दो राय नहीं कि अब आबादी के लिहाज से दुनिया का सबसे बड़ा देश बन चुके भारत में हिंदी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है। इस तथ्य से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि और भी कई देशों में हिंदीभाषी हैं। कुछ देशों में तो बाकायदा हिंदी पढ़ने- पढ़ाने की सुविधा भी उपलब्ध है। इन तमाम तथ्यों के मद्देनजर द्रमुक के तेवर को देखें, तो उसके असली मनसूबे को समझ पाना ज्यादा मुश्किल नहीं। क्या यह विरोधाभास की पराकाष्ठा नहीं कि तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एम के स्टालिन को राज्य में अंग्रेजी के बढ़ते वर्चस्व से परहेज नहीं, पर हिंदी त्रि-भाषा फॉर्मूले के तहत भी स्वीकार्य नहीं ? हिंदी में उन्हें उपनिवेशवाद का खतरा नजर आता है, पर अंग्रेजी में भविष्य ?

विवाद का मूल कारण त्रि-भाषा फॉर्मूला माना जा सकता है। बेशक, यह फॉर्मूला 1968 का है, जिसके तहत राज्य के स्कूलों में मातृ भाषा या एक क्षेत्रीय भाषा, एक अन्य भारतीय भाषा और एक विदेशी भाषा पढ़ाई जानी चाहिए। विवाद का ताजा कारण तमिलनाडु की सर्वशिक्षा अभियान की 2,152 करोड़ रुपये की बकाया राशि है। स्टालिन ने इसके भुगतान के लिए प्रधानमंत्री को पत्र लिखा है, लेकिन नई शिक्षा नीति के तहत भुगतान के लिए त्रि-भाषा फॉर्मूला लागू किया जाना अनिवार्य शर्त है।

अब जरा तमिलनाडु की सत्ता राजनीति में हिंदी- विरोध की जड़ों की गहराई को समझिए । त्रि-भाषा फॉर्मूला तमिलनाडु में आज तक लागू नहीं किया गया है। आज भी वहां के स्कूलों में दो भाषा फॉर्मूले के तहत तमिल और अंग्रेजी पढ़ाई जाती है। हिंदी-विरोधी मानसिकता का इससे बड़ा सुबूत और क्या होगा कि पूरी दुनिया में औपनिवेशिक भाषा मानी गई अंग्रेजी में राज्य को भविष्य की प्रगति नजर आती है, पर देश में सर्वाधिक बोली जाने वाली हिंदी में उपनिवेशवाद का खतरा दिखता है? दरअसल, यह तमिलनाडु के क्षेत्रीय दलों और नेताओं द्वारा खड़ा किया गया ही आ ज्यादा है, क्योंकि त्रि-भाषा फॉर्मूले में हिंदी पढ़ाने की बाध्यता कहीं नहीं है। लगभग चार साल पहले जब नई शिक्षा नीति का मसौदा सामने आया था, तब भी तमिलनाडु के नेताओं ने हिंदी थोपे जाने का शोर मचाया था। तब केंद्रीय शिक्षा मंत्री ने स्पष्ट किया था। मसौदे में कुछ संशोधन भी किया गया था। नई शिक्षा नीति में साफ है कि त्रि-भाषा फॉर्मूले के अंतर्गत स्कूलों में मातृभाषा या एक क्षेत्रीय भाषा, एक अन्य भारतीय भाषा और अंग्रेजी वा एक अन्य विदेशी भाषा पढ़ाई जानी चाहिए। नई शिक्षा नीति के तहत त्रि-भाषा फॉर्मूले का यह

मंतव्य भी सामान्य समझ की बात है कि इसका उद्देश्य मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा के जरिये बच्चों में उनकी भाषा संस्कृति तथा हिंदी वा अन्य भारतीय भाषा के जरिये राष्ट्रीय एकता की समझ विकसित करना और अंग्रेजी या अन्य विदेशी भाषा के जरिये करियर में प्रगति के नए रास्ते खोलना है। खासकर सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तमिलनाडु की प्रगति बताती है कि वैश्वीकरण के इस दौर में अंग्रेजी वा विदेशी भाषा का महत्व उसने समझा है, पर हिंदी या अन्य भारतीय भाषा से परहेज उसकी क्षेत्रीय संकीर्णता को ही दर्शाता है। साफ है, मामला तमिल प्रेम से ज्यादा हिंदी-विरोधी मानसिकता का है।

गांधीजी ने 1918 में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना की थी, पर विडंबना देखिए कि तभी तमिल उप-राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित हिंदी विरोध की शुरुआत भी हो गई थी। तब तमिलनाडु को मद्रास प्रेसिडेंसी कहा जाता था। तमिलनाडु में हिंदी के प्रचार- प्रसार का पहला गंभीर प्रयास वर्ष 1937 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने उसे स्कूलों में अनिवार्य बनाकर किया, पर विरोध में तीन साल तक चले आंदोलन के बाद वह फैसला वापस लेना पड़ा।

तमिलनाडु में 1960 के बाद से हिंदी विरोध राज्य में सत्ता राजनीति का सबसे कारगर हथियार बन गया है। उसके बाद ही तमिलनाडु में द्रविड़ राजनीति की नींव पड़ी। 1965 में तो हिंदी विरोधी आंदोलन को बाकायदा द्रविड़ अस्मिता से जोड़ दिया गया और उसके दो साल बाद ही द्रमुक सत्ता में आ गई। उसके बाद से हर चुनावी जरूरत के वक्त द्रविड़ अस्मिता और हिंदी- विरोध को धार देकर जांचे परखे नुस्खे की तरह इसका इस्तेमाल किया जाता रहा है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि तमिलनाडु के सत्तारूढ़ दल द्रमुक के हिंदी-विरोधी तेवर आगामी विधानसभा चुनाव से साल भर पहले ही लगातार आक्रामक होते जा रहे हैं।

वर्ष 1967 में कांग्रेस की सत्ता से विदाई के बाद तमिलनाडुकी सत्ता राजनीति में द्रमुक और अन्नाद्रमुक का ही दबदबा रहा है। जयललिता के निधन के बाद अन्नाद्रमुक कमजोर है, पर पिछले चार साल से सत्तारूढ़ द्रमुक और उसके मुख्यमंत्री स्टालिन किसी तरह का चुनावी जोखिम नहीं लेना चाहते, इसीलिए लोकसभा सीटों के प्रस्तावित परिसीमन विवाद के बीच ही हिंदी थोपने के आरोपों को भी हवा दी जा रही है। इस आशंका को हवा देने के लिए ही स्टालिन अन्य दक्षिण भारतीय राज्यों को भी गोलबंद कर रहे हैं। प्रभावी जनसंख्या नियंत्रण के लिए पुरस्कार के बजाय कथित राजनीतिक दंड और हिंदी थोपने के आरोपों की लहर पर सवार होकर स्टालिन दरअसल अगले साल अपनी चुनावी नैया पार लगाना चाहते हैं, जो

उन्हें काशी - तमिल संगम आयोजन तथा छोटे-छोटे दलों संग चुनावी बिसात बिछाने समेत अनेक भाजपाई प्रयासों के कारण भंवर में फंसती दिख रही है।

हालांकि, राजनीति से प्रेरित हिंदी विरोध से परे जमीनी सच यह भी है कि तमिलनाडु के आम लोगों को हिंदी सीखने से कोई परहेज नहीं गांधीजी द्वारा 1918 में स्थापित दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा आज भी हिंदी सिखाने में सक्रिय है और उससे हिंदी पढ़ने वालों में 65 प्रतिशत तमिलभाषी हैं। लिहाजा, राजनीति- प्रेरित हिंदी विरोध के चक्रव्यूह में फंसने के बजाय उससे बचते हुए व्यापक राष्ट्रीय व सामाजिक हित में सकारात्मक सोच व आचरण ही वक्त का तकाजा है।